

भारतीय गणतंत्र धर्मनिरपेक्ष कब था

-मनोज कुमार झा

केन्द्र में नरेन्द्र मोदी की सरकार बनने के साथ ही संघ शक्ति प्रबल होती जा रही है। पूरे देश के भगवाकरण की जबरदस्त तैयारियों को अंजाम दिया जा रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख मोहन वैद्य ने कहा है कि देश और हिंदुत्व ही प्राथमिकता है। देश के साथ अब हिंदुत्व है। संघ के लिये देश और हिंदुत्व एक है। संघ की घोषित विचारधारा हिंदू राष्ट्रवाद है, तो क्या अब मोदीराज के साथ ही भारत देश की पहचान हिंदुत्व से होगी? या यह नव साम्राज्यवाद के देशी दलालों का षड्यंत्र है, साजिश है, जो लम्बे समय से रची जा रही थी और अब छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी ताकतों के पूरी तरह खोखला साबित हो जाने के बाद सफल होती नजर आ रही है।

भूलना नहीं होगा कि राष्ट्रवाद का अभ्युदय ऐतिहासिक दृष्टि से पूरी तरह एक यूरोपीय परिघटना है और राष्ट्रीयताओं का अभ्युदय धार्मिक आग्रहों, पूर्वग्रहों और चर्च की सत्ता से टकरा कर ही हुआ।

भारतीय राष्ट्रवाद की खासियत रही है कि इसका विकास औपनिवेशिक शक्तियों से संघर्ष के दौरान हुआ और 1857 के ग़दर के बाद जब अंग्रेजों को यह लगा कि सिर्फ़ हिंसक दमन कारगर नहीं होगा तो उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' की अपनी वो कुख्यात नीति अख़्तियार कर ली जिसका अंजाम धार्मिक आधार पर 'द्विराष्ट्रवाद' के सिद्धांत और फिर आजादी के साथ ही मानव सभ्यता की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक देश विभाजन के रूप में सामने आया। अब सवाल ये है कि आजादी के सड़सठ सालों के बाद केन्द्र में नरेन्द्र मोदी सरकार आने के साथ ही खुलकर शासकों के साथ उनके प्यादे भी हिंदुत्व की बात कर रहे हैं और इसे राष्ट्र का पर्याय बता रहे हैं। तो क्या अब 'खंड-खंड राष्ट्रवाद' के सिद्धांत को अमली जामा पहनाया जायेगा? अगर राष्ट्रवाद को इस तरह धर्म से जोड़ा गया तो देश को एक नहीं, अनेकानेक विभाजन के लिए तैयार रहना होगा। ग़ौरतलब है कि संघ के प्रचार प्रमुख मोहन वैद्य ने जैन-बौद्ध व सिख समुदाय को हिंदू धर्म का प्रतीक बताते हुए कहा है कि इन धर्मों की मान्यताओं में हिंदुत्व की झलक दिखती है और ये समान विचारधारा रखते हैं, तो क्या इससे ये समझा जाए कि टक्कर हिंदू और मुसलमान की है। यह एक भयावह संदेश है।

भूलना नहीं होगा कि मोदी के प्रधानमंत्री बनने से पहले और उसके बाद जबरदस्त दंगे हुए, हो रहे हैं, खास तौर पर सिख-मुस्लिम दंगा भी भड़का। संघ नेताओं और विश्व हिंदू परिषद् के सिंघल, तोगाडिया जैसे विषबुद्धि वाण छोड़ रहे हैं, आगे भी दंगे भड़काने के खतरे कम नहीं

अगर धार्मिक आधार पर राष्ट्र का विभाजन हो गया और कांग्रेस समेत तमाम दलों ने इसे स्वीकार कर लिया तो महज संविधान में दर्ज कर दिए जाने की वजह से ही भारतीय गणतंत्र धर्मनिरपेक्ष (अपने वास्तविक अर्थों में) नहीं रह गया। वह छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी रहा। 'हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई आपस में है भाई-भाई,' 'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना,' 'ईश्वर-अल्ला तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान' इसी तरह की कुछ धर्मनिरपेक्षता गांधी-नेहरू के सेक्युलरिज़्म और वामपंथियों के भी सेक्युलरिज़्म की खासियत बनी रही। चुनावी प्रक्रिया में वोटों को धर्म, जाति और सामुदायिक पहचान के आधार पर बांटा जाता रहा और जनता को लगातार बरगलाया जाता रहा। इस बीच, साम्प्रदायिक राजनीति जड़ें जमाती चली गईं उन्हें लगातार खाद-पानी मिलता रहा। धार्मिक संस्थाओं और प्रतिनिधियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा, मान्यता दी जाती रही। अल्पसंख्यक धार्मिक संस्थाओं को राजकीय अनुदान दिए जाते रहे, तिलक-चोटी की जगह हज यात्राओं और अल्पसंख्यक धार्मिक शिक्षण संस्थाओं को राजकीय प्रश्रय मिलने लगा, इसी आधार पर ईसाई मिशनरी भी शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हो गए पूर्ण राजकीय समर्थन के साथ। फिर कूपमंडूकता और साम्प्रदायिक आधार पर घृणा का प्रसार करने वाले उग्र हिंदूवादियों को कैसे रोका जा सकता था, जिनकी जड़ें देश के राजनीतिक इतिहास में बहुत गहरी थीं।

हैं। गुजरात नरसंहार की आरोपी माया कोडनानी को छोड़ दिया गया, गुजरात दंगों का ही मास्टर माइंड कहा जाने वाला नरेन्द्र मोदी का दायां हाथ अमितशाह भारतीय जनता पार्टी का अध्यक्ष बन बैठा संघ की स्वीकृति से, और न्यायपालिका से लेकर उच्च नौकरशाही में चुन-चुन कर ऐसे लोग बैठाए जा रहे हैं जो सरकार और संघ की हिंदुत्व की विचारधारा और छलावापूर्ण नीतियों के पैरोकार हैं। अभी हाल में ही अहमदाबाद में हुए एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश ए आर देव ने कहा है कि 'मैं तानाशाह होता तो पहली कक्षा से गीता पढ़वाता' इससे कुछ ऐसे ही संकेत मिल रहे हैं कि देश की जनता के लिए बड़े ही बुरे दिन आने वाले हैं। बहरहाल, सरकार और संघ ने, ऐसा लगता है कि अपने आपको ही देश समझ रखा हो। नरेन्द्र मोदी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उभार कोई अचानक हुई परिघटना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है, जिसका विकल्प फ़िलहाल नजर नहीं आता। ये दरअसल, दिखा देता है कि भारतीय गणतंत्र का धर्मनिरपेक्षतावाद जो संविधान में दर्ज है, किस क्रूर खोखला था। सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि यह 'सर्वधर्म समभाव' पर आधारित गांधी-नेहरू सेक्युलर मॉडल था, जबकि सेक्युलरिज़्म का मतलब है कि राज्य का धार्मिक मामलों से कोई लेना-देना नहीं होगा और यह व्यक्तिगत विश्वास एवं आस्था की चीज होगा। ऐसा हुआ नहीं, हो सकता भी नहीं था, क्योंकि नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस और सहयोगी दलों व वामपंथियों ने साम्प्रदायिक आधार पर राष्ट्र का विभाजन स्वीकार कर लिया था और राष्ट्रीय मुक्ति की जनाकांक्षा को लेकर

साम्राज्यवादी शक्तियों से संघर्ष आगे बढ़ाने की जगह उनसे समझौता कर लेना ही उभरते राष्ट्रीय पूंजीवाद के हित में जरूरी समझ था, जो दरअसल साम्राज्यवाद की छत्रछाया में ही अपने विकास के अवसर ढूँढ रहा था। वह अपने चरित्र में वास्तव में पतनशील और एक हद तक जनविरोधी भी था।

अंतरराष्ट्रीय शक्तिसंतुलन में सोवियत सत्ता के प्रमुख रूप से उभर जाने के कारण और मार्क्सवाद के मूल दर्शन अन्तरराष्ट्रीय सर्वहारावाद से विमुख हो जाने के कारण वामपंथियों को गुमराह होने के दर न लगी। जहां तक कांग्रेस का सवाल है, वह तो ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और समझौते के मार्ग पर शुरू से ही चल रही थी।

अगर धार्मिक आधार पर राष्ट्र का विभाजन हो गया और कांग्रेस समेत तमाम दलों ने इसे स्वीकार कर लिया तो महज संविधान में दर्ज कर दिए जाने की वजह से ही भारतीय गणतंत्र धर्मनिरपेक्ष (अपने वास्तविक अर्थों में) नहीं रह गया। वह छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी रहा। 'हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई आपस में है भाई-भाई,' 'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना,' 'ईश्वर-अल्ला तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान' इसी तरह की कुछ धर्मनिरपेक्षता गांधी-नेहरू के सेक्युलरिज़्म और वामपंथियों के भी सेक्युलरिज़्म की खासियत बनी रही। चुनावी प्रक्रिया में वोटों को धर्म, जाति और सामुदायिक पहचान के आधार पर बांटा जाता रहा और जनता को लगातार बरगलाया जाता रहा। इस बीच, साम्प्रदायिक राजनीति जड़ें जमाती चली गईं उन्हें लगातार खाद-पानी मिलता रहा। धार्मिक संस्थाओं और प्रतिनिधियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा, मान्यता

दी जाती रही। अल्पसंख्यक धार्मिक संस्थाओं को राजकीय अनुदान दिए जाते रहे, तिलक-चोटी की जगह हज यात्राओं और अल्पसंख्यक धार्मिक शिक्षण संस्थाओं को राजकीय प्रश्रय मिलने लगा, इसी आधार पर ईसाई मिशनरी भी शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हो गए पूर्ण राजकीय समर्थन के साथ। फिर कूपमंडूकता और साम्प्रदायिक आधार पर घृणा का प्रसार करने वाले उग्र हिंदूवादियों को कैसे रोका जा सकता था, जिनकी जड़ें देश के राजनीतिक इतिहास में बहुत गहरी थीं।

नेहरू काल में तो नहीं, पर इंदिरा काल में सत्ता के दरबार में 'रासपुटिन' का प्रवेश भी शुरू हो गया था। राजीव गांधी को छोड़ दें तो नरसिंहराव लगातार 'रासपुटिन' चंद्रास्वामी के प्रभाव में थे। ऐसे कई दिग्गज धर्मनिरपेक्ष नेता रहे हैं, जिनके लिए धर्मनिरपेक्षता सिर्फ़ 'रघुपति राघव राजा राम' होकर ही रह गई और कई धर्मनिरपेक्षतावादी इस चक्कर में 'अल्पसंख्यकवादी' होकर रह गए। वामपंथियों की इस पर कोई स्वतंत्र धारणा विकसित नहीं हो पाई, क्योंकि वे औपनिवेशिक ढांचे वाले भारतीय गणतंत्र को स्वीकार चुके थे, संविधान में दर्ज किए गए झूठ को भी उन्होंने सत्य मान लिया था, इसकी वजह ये है कि वे सत्ता के अंग बन गए थे। भूख और गरीबी जैसे अहम मसलों का हल न हो तो वोटों की राजनीति में धार्मिक और जातीय पहचान को उभार कर स्वार्थ सिद्ध करना आसान हो जाता है। और यह राजनीतिक प्रक्रिया नेहरू-इंदिरा-राजीव-सोनिया क्रम में अब अपनी उस परिणति तक पहुंच गई है, जब धर्मनिरपेक्षता को लेकर वामपंथी भी नारेबाजी के अलावा और कुछ नहीं कर सकते। यहां यह मान लेने में कोई संदेह

नहीं होना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रवाद का चरित्र मौलिक रूप से धर्मनिरपेक्ष कभी नहीं रहा। हां, उसपर 'धर्मनिरपेक्षता' का मुलामा अवश्य चढ़ा रहा जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

ऐसे में, छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी कांग्रेस-वामपंथियों-मध्यमार्गियों-समाजवादियों की राजनीति खंड-खंड हो लूटमार पर आधारित हो गई। बड़े-बड़े घोटालों और भीषण नवसाम्राज्यवादी लूट ने देश की अर्थव्यवस्था को खोखला कर दिया तो उनका राजनीति प्रभाव भी शून्य हो गया। लोकसभा चुनाव में कांग्रेस समेत तमाम दलों की भीषण पराजय हुई, अल्पसंख्यकवाद काम नहीं आया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 'हिंदू राष्ट्रवाद' के प्रतिनिधि नरेन्द्र मोदी ने शासन की बागडोर संभाल ली। यह पूर्व से चली आ रही प्रक्रिया की स्वाभाविक परिणति ही है।

खास बात ये है कि 'हिंदू राष्ट्रवाद' की राजनीति के सर्वसत्तावादी होने को कोई चुनौती दर पेश नहीं है, क्योंकि कांग्रेस-वामपंथियों समेत अन्य तमाम दल जाति और धर्म की ही राजनीति कर रहे हैं। जैसे ये माना जाता है कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' वैसे ही भाजपा को छोड़ तमाम राजनीतिक दलों का मानना है कि 'अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता साम्प्रदायिकता न भवति।' वोट 'दे अल्ला के नाम पर, दे ईश्वर के नाम पर' मांगे जाते हैं। चुनावों के मौसम में कई दलों के नेता जामा मस्जिद के इमाम के साथ खड़े हो जाते हैं और उनसे अपने पक्ष में वोट देने की अपील करवाते हैं। कई शंकराचार्यों और महंतों-धर्माचार्यों के आगे शीश नवाते नजर आते हैं।

ऐसे में, भाजपा को साम्प्रदायिक और अन्य तमाम दलों को धर्मनिरपेक्ष मानना ग़लत होगा। दरअसल, भारतीय गणतंत्र के मूल में ही धर्मनिरपेक्षता नहीं थी। यह अलग बात है कि या 'धार्मिक राज्य' नहीं रहा, पर राष्ट्रवाद के साथ धर्म का घालमेल शुरू से ही बना रहा।

साम्प्रदायिकता कभी भी खुलकर सामने नहीं आती। महान साहित्यकार प्रेमचंद के शब्दों में यह गीदड़ की तरह शेर का खाल पहन कर सामने आती है। अब यह छप्पन इंच के सीने के रूप में आई है तो ऐसी चुनौती भी है कि जिसका जवाब फ़िलहाल नहीं दिखाई नहीं देता, क्योंकि कांग्रेस समेत तमाम प्रमुख दलों में विलोपन की स्थिति पैदा हो रही है। फिर साम्प्रदायिकता का हमला इतने छुपे रूपों में होता है कि निशाना कौन किससे बना रहा है, ये साफ़ दिखता नहीं और इस क्रम में कई अल्पसंख्यक धार्मिक समुदायों को भारी वंचना का शिकार होना पड़ता है। आज देश में स्थितियां कुछ ऐसी ही बन गई हैं।

मछली बाजार

राहुल बाबा 'वेल' में...

मीडिया के मछली बाजार में ऊल-जलूल मुद्दों के बीच राहुल बाबा के 'वेल' में होने ने बाज़ी मार ली। जनता जहां महंगाई, भ्रष्टाचार और काले धन की तिहरी मार झेल रही है वहां राहुल का लोकसभा के 'वेल' में कांग्रेसी सांसदों के साथ शोर मचाना मीडिया की सुर्खियों और बहसों में छाया रहा।

राहुल ने साम्प्रदायिकता के विरोध में संसद में मोर्चा खोला और मीडिया ने अपने स्टूडियो में। दोनों जगह सारे चरित्र वही हैं जो या तो साम्प्रदायिक तनाव फ़ैलाने वालों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं या फिर साम्प्रदायिक तनाव का राजनीतिक फ़ायदा उठाने वाले गिरोह में शामिल हैं। तमाम टी.वी चैनलों ने गंगा की सफाई और वन्य जीवों की सुरक्षा जैसे मसलों पर भी काफ़ी समय लगाना जारी रखा है। ऐसा वे कार्पोरेट सोशल दायित्व (सी एस आर) के तहत अपने पास जमा

करोड़ों के फंड को अपने ऊपर ही उड़ाने के लिए करते हैं। सरकार के नये नियमों के अन्तर्गत मुनाफ़े का 2 प्रतिशत सी एस आर पर खर्च करना होता है। बड़े चैनलों ने यह रास्ता इसी लिये निकाला है कि पंचतारा सुविधाओं के साथ वे 'गंगा बचाओ', 'पर्यावरण बचाओ', 'शेर बचाओ' जैसे पाखंड परोसते रहें। सी एस आर का सी एस आर और पिकनिक की पिकनिक।

खैर, राहुल गांधी ने, बेशक 'वेल' में जाकर, एक बात सही कही-देश में एक ही आदमी बोलता है। एक ही आदमी यानी नरेन्द्र मोदी। क्यों कि यह आदमी चैनलों पर आकर या उनके कैमरों पर तो बोलना नहीं, लिहाज़ा सारे चैनल इस आदमी का एक-एक अन्दाज़, एक-एक क्षण, एक-एक अदा दर्शकों के सामने पेश करने में बढ़-चढ़ कर लगे रहे हैं। अब वे ट्वीट कर रहे हैं; अब वे मीटिंग

ले रहे हैं; अब वे विदेश जा रहे हैं; अब वे मन्दिर में पूजा कर रहे हैं; अब वे अपने मन्त्रियों व सचिवों की क्लास ले रहे हैं; अब वे मुस्करा रहे हैं; अब वे गंभीर हैं; अब वे...; अब वे।

नरेश चन्दा का जी चैनल, जिसके दो बड़े सम्पादक खान घोटालों के दोषी नवीन ज़िंदल से 100 करोड़ की फ़िरौती मांगते पकड़े गए थे, अब एक नया चैनल (ज़िंदगी) लेकर आया है जिस पर पाकिस्तानी सीरियल दिखाये जा रहे हैं। इनके कथानक भी भारतीय सीरियलों की तरह पारिवारिक रिश्तों और जिन्दगी पर केन्द्रित होते हैं। फ़र्क यह है कि वे शाम 8 से 12 बजे तक प्राइम टाइम में टेलिकास्ट होते हैं जबकि भारतीय पारिवारिक सीरियल दोपहर के गहिणी टाइम में। गुणावत्ता के लिहाज़ से भी पाकिस्तानी सीरियल कहीं बेहतर हैं।

तो भी स्त्री की घरेलू, सामाजिक एवं वैवाहिक स्थिति पाकिस्तानी सीरियलों में भी वैसी ही पुरुष-निर्भर है जैसी कि भारतीय सीरियलों में चित्रित की जाती है। यहां तक कि कई चित्रण तो हूबहू 'और ही औरत की दुश्मन' की शैली पर ही होते हैं। कारण भी वही हैं-पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की विवशता।

हालांकि इनमें आश्चर्यजनक रूप से कई मजबूर स्त्री चरित्र भी हैं जो अपनी स्थिति से ही नहीं, जमाने से भी लोहा लेने की क्षमता प्रदर्शित करते हैं। लगभग हर टी.वी चैनल पर संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सी-सैट प्रारूप से परीक्षा के विवाद पर लम्बी-लम्बी बहसों हिन्दी बनाम अंग्रेज़ी के अन्दाज़ में की गयीं। इस संदर्भ में आसानी से रोज़गार का बड़ा मुद्दा भी उठाया जा सकता था। इसी के साथ तमाम राज्यों के लोक सेवा आयोगों में

व्याप्त भ्रष्टाचार को रेखांकित किया जा सकता था। पर एक यथावत बहस की गयी जिससे यथावत बिंदु पर लाकर छोड़ दिया गया।

किसी चैनल ने मुकेश अम्बानी से सवाल पूछने की हिम्मत नहीं दिखाई कि वह केन्द्र सरकार से किये अनुबंध को धत्ता बता कर गैस उत्पादन में एकतरफ़ा कमी लाने का साहस कैसे कर रहा है?

15 अगस्त को लालकिले की प्राचीर से प्रधानमंत्री मोदी के भाषण को तमाम मीडिया चैनलों ने लम्बी चौड़ी बहस का विषय बना दिया हालांकि मोदी के हाव-भाव और विषयों के चयन को यदि उनके एक धत्ता बतक के रूप कैरियर की पृष्ठ भूमि में देखें तो उनका सारा सम्बोधन पूर्व संध्या पर लालकिले में हुये हास्य कवि सम्मेलन का ही विस्तार नजर आता था।

-अशरफ़